NJESR/March-2022/Volume-4/Issue-3 E-ISSN-2582-5836

DOI-10.53571/NJESR.2022.4.3.40-42

पुरुष लेखकों में नारी विमर्श

संगीता झगटा

सह आचार्या

हिन्दी विभागाध्यक्ष

राजकीय कन्या महाविद्यालय शिमला – 1

(received: 20 February 2022/Revised: 5 March 2022/Accepted: 15 March 2022/Published: 21 March 2022)

Sangeetajhagta0@gmail.com

प्रस्तावना : आधुनिक युग के साहित्य में नवीन गद्य विधाओं के उद्भव से मानवीय जीवन की यथार्थ परिस्थितियों का चित्रण संभव हो पाया है। उपन्यास इस नये युग के यथार्थ को, मानवीय नवीन संकुल परिस्थितियों को, नवीन मानवीय सरोकारों और दायित्व को रूपायित करने वाली कथा साहित्य की एक नवीन विधा है। उपन्यास के रूप में यह नयी विधा हिन्दी साहित्य में न आती, तो नारी के विविध रूपों का यथार्थ चित्रण संभव ही न होता।

प्रेमचन्द पूर्व काल के उपन्यासों में नारी चित्रण

यह एक सुखद एवं आश्चर्यजनक संयोग है कि हिन्दी का प्रथम उपन्यास पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत '**भाग्यवती'** नारी चेतना एवं नारी शिक्षा से सम्बद्ध है। इसमें तथ्य यह है कि 'भाग्यवती' अपने पति से दबती नहीं है। वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय देती है। इसके पश्चात् नारी – चित्रण की दृष्टि से जगमोहन कृत '**श्यामा स्वपन'** (1888), लज्जाराम शर्मा कृत '**आदर्श दम्पत्ति**' (1904), '**बिगड़े का सुधार'** (1907) अथवा '**सती सुखदेवी**' आदि उपन्यास हैं। अतः नारी पात्र इसमें व्यक्तित्व संपन्न और जीवन्त न होकर कठपुतलीनुमा लगते हैं।

प्रेमचन्द युग के उपन्यासों में नारी चित्रण

प्रेमचन्द के अनेक उपन्यासों में नारी चित्रण मिलता है। सन् 1906 में प्रेमचन्द का **'प्रेमा'** प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने विधवा – विवाह की समस्या को उठाया है। इसमें लेखक ने रामकली, पूर्णा तथा प्रेमा तीनों स्त्रियों के विधवा – विवाह करवाये हैं। इस उपन्यास की नारी पात्र अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय देती हैं। **'वरदान'** उपन्यास में प्रेमचन्द ने नारी उत्थान एवं नारी प्रवित्ति के नये क्षितिजों का उद्घाटन किया है। **'सेवासदन'** अनमेल विवाह, विधवा विवाह, वेश्यावृत्ति की समस्या जैसे आयामों को स्पष्ट करता है। इसके पश्चात् प्रेमचन्द जी के '**प्रेमाश्रय'** (1920), '**रंगभूमि'** (1925), '**कायाकल्प'** (1926), '**निर्मला'** (1927), '**गबन'** (1931), '**कर्मभूमि'** (1933), '**गोदान'** (1936) आदि उपन्यास आते हैं, जिसमें सुखदा, निर्मला, जालपा, सोफिया, धनिया जैसे कुछ सशक्त नारी पात्र दिये हैं। प्रेमचन्द के नारी पात्रों में संघर्ष है, जिजीविषा है, रूढ़ियों और अंधविश्वासों से टकराने का साहस है। इनके नारी पात्र बदलते जमाने के तेवरों का तीखापन लिए हुए है।

प्रेमचन्द युग के उपन्यासकारों में विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', जयशंकर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त आदि की परिगणना कर सकते हैं। निम्न कोटि की नारी पात्रों में उच्च मानवीय गुणों के दिग्दर्शन कौशिक जी के उपन्यासों की विशेषता है। नारी चित्रण की दृष्टि से उग्र का 'बुधुआ की बेटी' एक सशक्त उपन्यास है। भगवती प्रसाद वाजपेयी ने 'प्रेमपथ', 'पतिता की साधना' आदि उपन्यासों में नारी जीवन की विशेषताओं का आदर्शात्मक ढंग से चित्रण किया है। प्रसाद ने 'कंकाल' उपन्यास में तथाकथित कुलीन वर्ग की बखिया उधेड़ी हैं। प्रेमचन्द युग में नारी पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाने लगी है। पढ़-लिखकर आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ वह सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों में हिस्सेदारी करने लगी थी।

प्रेमचन्दोत्तर काल के उपन्यासों में नारी चित्रण

1960 के बाद के उपन्यासों में नारी जीवन के प्रति पुरुष-समाज की लंपटता तथा कामुकता का नग्न चित्रण हुआ है। भगवती प्रसाद वाजपेयी के उपन्यासों में सुधार के साथ भावुकता भी दृष्टिगोचर होती है। स्त्री-पुरुष का शाश्वत प्रेम उनका प्रिय विषय था। ऋषभचरण जैन ने मुख्यतः वेश्यावृत्ति की समस्या, सामन्तकालीन विलासिता तथा अभिजात वर्ग में व्याप्त यौन-विकृत्तियों का चित्रण किया है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का उपन्यास '**राम-रहीम**' नारी जीवन से सम्बद्ध है, जिसमें दो नारी पात्रों को आमने-सामने रखकर उनकी चरित्रगत विसदृशता के द्वारा प्रकारान्तर से लेखक ने भारतीय समाज को सावधान किया है।

गोविन्दवल्लभ पंत के उपन्यास '**जुनिया**' में डोम जाति के लोगों के आर्थिक लैंगिक शोषण को लेखक ने रेखांकित किया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास 'देववासी' नारी जीवन से सम्बद्ध एक नये आयाम को स्थापित करता है। नारी चेतना की दृष्टि से '**सर्वदानंद वर्मा**' तथा '**नरमेध**' भी महत्वपूर्ण हैं। यशपाल का '**दिव्या**' भी इसी कड़ी का उपन्यास है।

स्वतंत्रता पूर्व और बाद के उपन्यासों में नारी चित्रण

स्वतंत्रता पूर्व के उपन्यासों में नारियों को लेकर जहाँ अत्याचार और शोषण मिलता है, वहीं एक अन्दरूनी शक्ति भी थी कि आजादी के बाद इनके जीवन में बदलाव आयेगा और अन्याय शोषण की मात्रा कम होगी, परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। अन्याय व शोषण के स्वरूप बदल गए पर नारी जीवन नहीं।

नागार्जुन के उपन्यास '**बलचनमा**' में गांव के ज़मींदार खेतिहर मजदूरिनों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं, उसका यथार्थवादी चित्रण इसमें हुआ है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास '**मैला आँचल**' में पिछड़ी जातियों के लोगों की स्त्रियों के नैतिक शोषण और उनके साथ लगातार होने वाले अमानुषी व्यवहार का सिलसिला जारी है। इसके कारण नैतिक चेतना कुन्द हो गई है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की धारा में जैनेन्द्र के नारी पात्र प्रायः आत्मपीड़क, स्वतंत्र प्रकृति के क्रांतिकारियों को चाहने वाले चित्रित किये गये हैं। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में नारी पात्रों का चित्रण सहज, स्वाभाविक रूप में न होकर मनोवैज्ञानिक सूत्रों के आधार पर हुआ है।

नगरीय क्षेत्रों में तो कहीं-कहीं ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षित नारी आर्थिक रूप से निर्भर होने के कारण कुछ स्वतंत्रता का अनुभव कर रही है। जैसे-जैसे नारी शिक्षा का ग्राफ बढ़ रहा है, वैस-वैसे ही नारी चेतना में वृद्धि हो रही है और गुलामी

की बेड़ियों को तोड़ती जा रही है। गाँव मैं स्त्रियों की स्थिति शोचनीय है, वहाँ उनका शोषण प्रभुसत्ता सम्पन्न लोगों द्वारा होता है। कुछ उपन्यास ग्रामीण नारी की समस्याओं को प्रमुखता से उजागर करते हैं –

पानी के प्राचीर (1961) – डॉ. रामदरश मिश्र द्वारा लिखित उपन्यास स्वतंत्रतापूर्व के ग्रामीण परिवेश को चित्रित करता है। इसमें ग्रामीण जीवन की गरीबी, जमींदारों द्वारा गरीब किसानों का शोषण, अनमेल विवाह आदि समस्याओं को उकेरा गया है। 'पानी के प्राचीर' में जहाँ स्वाधीनती पूर्व की कथा को लिया गया है, वहीं **'जल टूटता हुआ'** (1969) में स्वाधीनता के बाद के गाँवों की स्थिति को विश्लेषित किया गया है। ग्रामीण मूल्य टूट रहे हैं, शहरी मूल्यों का दबाव बढ़ता जा रहा है। 'जल टूटता हुआ' जीवन निर्मूल्यों का प्रतीक है जिसके प्रवाह में जीवन के सही आदर्श बह जाते हैं।

रामदरश मिश्र का उपन्यास '**सूखता हुआ जल**' प्रतीकात्मक है। इसमें गाँव का तालाब सूख गया है, जिसमें काई व कीचड़ हो गई है, जो ग्रामीण मूल्यों के ह्रास एवं गंदगी के फैलने का प्रतीक है। इस उपन्यास में जहाँ उच्च वर्ग की कन्याएँ गर्भ रहने पर उसे गिरा देती हैं, वहीं चमारिन गर्भ न गिराकर पूरे गाँव और समाज को चुनौती देती है। इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन के परिप्रेक्ष्य में स्त्रियों की विविध समस्याओं को सजीव चित्रित किया गया है।

सारांश : जहाँ नगरीय जीवन की महिलाओं की कुछ समस्याएँ हैं, वहीं ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध स्त्रियों की समस्याएँ उनसे कुछ भिन्न प्रकार की हैं। लाख सुधार आन्दोलनों के बावजूद, बहुत से दूर-दराज के गाँव में अभी भी अशिक्षा, अंधविश्वास, सामन्तकालीन अत्याचारों से नारी पीड़ित है।

अनेक महिला संस्थानों में अग्रणी नेता के रूप में रह चुकी **प्रमिला दण्डवते** ने एक सर्वेक्षण में बताया था कि गाँवों में पंचायत आदि में स्त्रियों का प्रतिनिधित्व तो होता है, परन्तु वहाँ उनके स्थान पर उनके पति, जेठ, बेटे या ससुर ही सारी कार्यवाहियाँ करते हैं।

महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों की तो बात की जाती है, परन्तु उसकी पूर्ति शायद ही हो पाती है। अनेक दबावों के कारण इन निर्णयों को बदलना पड़ता है। हमारे समाज में न मुसलमान महिलाएँ मस्जिद में कुरान पढ़ सकती हैं और न आर्य ललनाएँ वेद-पुराण। भाड़ में गए संवैधानिक मौलिक अधिकार-समता, समानता और धर्म की आज़ादी।

पुरुष प्रधान समाज मान-मर्यादा की आड़ में सदा नारी को दबाकर चार दीवारी में कैद रखना चाहता है, इन्हीं बेड़ियों को लाँघने की लड़ाई लगातार नारी लड़ रही है।

संदर्भ सूचि :

आजकल मार्च 2013

प्रेमचन्द के उपन्यास – निर्मला, गबन, गोदान

यशपाल का उपन्यास – दिव्या

जैनेन्द्र का उपन्यास – त्यागपत्र

रामदरश मिश्र के उपन्यास – पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ

नागार्जुन का उपन्यास – बलचनमा